श्रुतसंवेगी मुनिश्री 108 आदित्यसागरजी महाराज के सान्निध्य में 21-23 मार्च 2025 राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी, इंदौर

सच्चत्थ-बोहो का भाषा वैशिष्ट्य

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़, सागर
(राष्ट्रपति सम्मानित)
संयुक्त मंत्री, अ.भा.दि. जैन शास्त्रि परिषद्

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वापि निधिमग्रतः।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते।।

भले ही भाग्य से, एक खजाना सामने पड़ा हुआ दिखाई दे, (काका-तलिया न्याय के रूप में), भाग्य इसे हाथ में नहीं देता है, कुछ प्रयास (उसे उठाने का) (अभी भी) अपेक्षित है।

सारांश

सच्चत्थबोहो प्राकृत भाषा में निबद्ध एक उत्कृष्ट कृति है। यह हिन्दी भाषा में आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महराज द्वारा निबद्ध सत्यार्थबोध की प्राकृत भाषा में निबद्ध कृति है जो कि श्रुतसंवेगी मुनिश्री आदित्यसागरजी महाराज का हम सभी पर परम उपकार का फल है। यह कृति भाषा सौष्ठव के मोतियों से निर्मित है। जिसमें भाषा में सुंदरता, सुगमता और प्रभावशीलता, अर्थात भाषा को सही और प्रभावी ढंग से प्रयोग करने की क्षमता स्पष्टतया झलकती है। सच्चत्थबोहो ग्रन्थ में 31 अध्याय हैं। कुल मिलाकर यह सत्यार्थ-बोध ग्रन्थ प्राकृत अनुष्टुप् श्लोकों की संख्या की अपेक्षा 4000 श्लोक प्रमाण है। सूत्रों की अपेक्षा 1071 सूत्र प्रमाण है। अध्याय की अपेक्षा 31 अध्याय प्रमाण है और प्रति अध्याय की अपेक्षा 62 अध्याय प्रमाण है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ नीतिवाक्यों एवं सूक्ति-सुभाषितों से परिपूर्ण है। यह ग्रन्थ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है। सच्चत्थबोहो के विसण अध्याय के 90वें भाग में कहा है - जह चादगो सादि-णक्खत्त-णीरबिंदुं पस्सेदि, तहेव धम्मपप्पा तच्चण्हु-पुरिसाणं सिरिमुहं पस्सेदि।[1] जैसे चातक स्वाति-नक्षत्र की पानी की बूँद को देखता है, उसी प्रकार धर्मात्मा तत्वज्ञ-पुरुषों के श्रीमुख को देखता है।

[1] सच्चत्थबोहो/विसण/ 90/पृष्ठ 316

प्रस्तावना –

जीवन में मूल्य होना आवश्यक है। मूल्यपरक जीवन स्वयं को और अन्य को प्रेरित करता है। जिसके जीवन में मूल्यशिक्षा का अभाव है, उसका जीवन अत्यंत कठिन हो जाता है। नैतिकता के परिपालन के अभाव में मानवीय संवेदनाएं समाप्त हो जाती है। चर्याशिरोमणि आचार्यश्री 108 विशुद्धसागरजी महाराज स्वयं में नैतिक की प्रतिमूर्ति हैं और उन्होंने नैतिक मूल्यों से संजोया हुआ सत्यार्थबोध की रचना कर प्राणियों का अत्यंत उपकार किया है। इस उपकार में महत्वपूर्ण श्रेय श्रुतसंवेगी मुनिश्री 108 आदित्यसागरजी महाराज को भी जाता है जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से सत्यार्थबोध पर सच्चत्थबोहो प्राकृत भाषा की टीका की रचना की है। सच्चत्थबोहो ग्रन्थ में 31 अध्याय हैं। कुल मिलाकर यह सत्यार्थ-बोध ग्रन्थ प्राकृत अनुष्टुप् श्लोकों की संख्या की अपेक्षा 4000 श्लोक प्रमाण है। सूत्रों की अपेक्षा 1071 सूत्र प्रमाण है। अध्याय की अपेक्षा 31 अध्याय प्रमाण है और प्रति अध्याय की अपेक्षा 62 अध्याय प्रमाण है।

इस ग्रन्थ में पंच महाव्रत, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य धर्म, व्यसन आदि विषयों पर विस्तृत रूप से व्याख्यान किया गया है। मुनिश्री आदित्यसागरजी महाराज ने 48 पृष्ठों में प्रस्तावना लिखी है। उनकी यह प्रस्तावना प्राचीन विद्वानों की प्रस्तावना को स्मरण दिलाती है। प्रस्तावना की मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने प्रस्तावना में इन 62 अध्यायों के विषय के साथ-साथ, इन अध्यायों को पढ़ने के पश्चात् होने वाली 60 सार्थक हानियों के संबंध में उल्लेख किया है और 60 लाभ के विषय में चर्चा की है, जो कि अद्वितीय हैं। निःसंदेश ही यह सच्चत्थ-बोहो प्राकृत शौरसेनी की रचना अद्भुत है। इस ग्रन्थ का शब्द-शब्द आनंद को देने वाला है और जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाला है। मुनिश्री आदित्यसागरजी महाराज, जो कि प्राकृत भाषा सहित अनेक भाषाओं के विज्ञ हैं, उन्होंने अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहा, जो कि उन्हीं के शब्दों में ही कह रहे हैं – **यह ग्रन्थ कैसे प्राकृत भाषा में लिखा गया मैं स्वयं नहीं जानता? गुरु-आशीष और गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही इस अनुवाद का कारण रहा है।** यह ग्रन्थ पूज्यश्री ने अपने भीलवाड़ा प्रवास के दौरान वर्ष 2023 में 4 माह में पूरा किया है। यहाँ हम सच्चत्थ-बोहो ग्रन्थ का भाषा वैशिष्ट्य पर चर्चा कर रहे हैं।

1. भाषा की सरलता और प्रवाह – सच्चत्थ-बोहो शौरसेनी प्राकृत की रचना है। भाषा का प्रयोग अत्यंत सरल और सहज है। इसके ग्यारहवें अध्याय के 25वें सूत्र में कह रहे हैं –

धेरियगुणो सव्वगुण-आधारो। धेरिय-वसुहाए विणा गुणस्स थिरत्तं किंपि ठाणं णत्थि। धेरियं समया संपुण्ण-गुणाणं मंडिदकरणस्स अहियारो त्थि।।[2]

धैर्यगुण सर्वगुणों का आधार है, बिना धैर्य-भूमि के किसी भी गुण को स्थित होने को कोई स्थान नहीं है। सम्पूर्ण गुणों को मंडित करने का अधिकार धैर्य के पास है।

उपरोक्त कथन निश्चित ही भाषा का सरल प्रवाह है, जो सहज ही धैर्य को परिभाषित कर रहा है। धैर्य को परिभाषित करने के लिए उपरोक्त विवेचन के साथ अन्य स्थान पर भी कथन है - **धीरैः संप्राप्यते लक्ष्मी धैर्यं सर्वत्र।** धैर्यवान व्यक्ति ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है, धैर्य ही सब जगह साधन है। कहा गया है -

धैर्यं सर्वत्र सर्वदा, सर्वदा धैर्यमेव हि।
धैर्येण हि सुखं सर्वं, नास्ति दुःखं कदाचन।।

धैर्य हर जगह और हर समय में होता है। धैर्य ही से सब सुख होता है, कभी दुःख नहीं होता।

एक अन्य उदाहरण -

जो होदि सिट्ठो, सदायारी, कत्तव्व-णिट्ठो, गुरुभत्तो, भव-भयभीदो, तच्च-पिवासु, सरलसहाववतंतो, पमाद-सुण्णो, विज्जाणुरागी य, सोच्चिय उत्तमो सिस्सो।।[3]

शिष्य वही श्रेष्ठ होता है जो शिष्ट, सदाचारी, कर्तव्यनिष्ठ, गुरुभक्त, भव से भयभीत, तत्व-पिपासु, सरल स्वभावी, प्रमाद-शून्य एवं विद्यानुरागी हो।

उपरोक्त कथन को स्पष्ट करते हुए सामान्य रूप से प्रचलित शिष्य की परिभाषा है - एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी गुरु, शिक्षक से ज्ञान, कौशल या विश्वास प्राप्त करने के लिए समर्पित होता है और उनके मार्गदर्शन का अनुसरण करता है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है -

दुग्धेन धेनुः कुसुमेन वल्ली शीलेन भार्या कमलेन तोयम् ।
गुरुं विना भाति न चैव शिष्यः शमेन विद्या नगरी जनेन ॥

[2] **सच्चत्थबोहो/11/25**
[3] **सच्चत्थ बोहो/17/1**

जैसे दूध बगैर गाय, फूल बगैर लता, शील बगैर भार्या, कमल बगैर जल, शम बगैर विद्या, और लोग बगैर नगर शोभा नहीं देते, वैसे हि गुरु बिना शिष्य शोभा नहीं देता ।

शैली: वर्णनात्मक, संवादात्मक, भावात्मक, तर्कपूर्ण या विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है।

वर्णनात्मक – जितने भी अध्यायों का प्रणयन है। उनकी शैली वर्णनात्मक है। एक विषय को लेकर सामान्य कथन, विशेष कथन, नैतिक दृष्टिकोण, दार्शनिक दृष्टिकोण और समाजिक प्रभाव आदि को लेकर वर्णन किया गया है। एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं –

सातवें अध्याय प्रमोद की सामान्य से परिभाषा देते हुए लिखते हैं –

मुह-पसण्णदा-पहुदीहिं अंतरंगे भत्ति-अणुराग-पयडीकरणं पमोदो।[4]

मुख की प्रसन्नता आदि के द्वारा अंतरंग में भक्ति और अनुराग व्यक्त होना प्रमोद है।

तत्पश्चात् दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रमोद को स्पष्ट करते हैं –

परमट्ठेण णियप्पगुणेसु आणंदिदभावो पमोदो।[5]

परमार्थ से निजात्मगुणों में आनंदित होना प्रमोद भाव है।

अन्त में, पुनः सामान्य कथन के माध्यम से श्रावकों को समझाने का प्रयास करते हैं और कहते हैं –

धम्म-धम्मप्पा पस्सिय चित्ते उप्पण्णो पसण्णभावो सच्चत्थ-पमोद-भावो त्ति।।[6]

धर्म-धर्मात्मा को देखकर जो अंतरंग में गद्गद् भाव है, वही सत्यार्थ प्रमोद-भाव है।

तर्कपूर्ण और विश्लेषणात्मक शैली – वैसे तो सर्वत्र ही तर्क से सम्पूर्ण कथनों को सिद्ध किया है। साथ-साथ बहुत ही श्रेष्ठ रीति से विश्लेषण किया है। तृतीय अध्याय में राजा के कर्त्तव्य के विषय में तर्क देते हुए और उदाहरण से समझाते हुए कहते हैं –

रुक्खफलमिव पयादो करगहणं महीव-कत्तव्वं। जहेव किसगो फलवंत-रुक्खत्तो फलमेव गेण्हेदि णं जडमूलत्तो रुक्ख-विघादं णवि करेदि णवरि आगामीफलाइं पि तम्हि रुक्खम्हि आगमेंति, तहेव महीवो पयादो करें गेण्हेज्जा, सव्वहरणं णेव कुज्जा। जदि महीवो अकारणं हि पयाए सव्वहरणं

[4] सच्चत्थबोहो/7
[5] सच्चत्थबोहो/7
[6] सच्चत्थबोहो/7

कुणदि दु सो वि दस्सु एव। आदाणप्पदाण-भावदंडो हीणाहिगो णो होज्जा अचोरियव्वदिस्स एवंविहवित्ती होदि।

राजा का कर्तव्य है कि प्रजा से कर ले, वृक्ष के फलवत्। जैसे कृषक वृक्ष से फल ही लेता है परंतु जड़मूल से वृक्ष का विद्यात नहीं करता है, क्योंकि आगामी फल भी उसी वृक्ष पर आयेंगे, उसी प्रकार से राजा प्रजा से कर तो ले, परंतु प्रजा का सर्वहरण न करे। यदि राजा बिना कारण प्रजा का सर्वहरण करता है, तो वह भी चोर है। लेन-देन के मापदण्ड न हीन हो और न अधिक हो, इस प्रकार की वृत्ति जो करता है, उसके अचौर्य व्रत पलता है।

भावात्मक शैली – भावपूर्ण कथन की दृष्टि से देखा जाए तो प्रमोद, कारुण्य, मैत्री आदि अध्यायों में अत्यंत भावपूर्ण कथनों की अधिकता प्राप्त होती है। एक प्रकरण से हम समझ सकते हैं कि सच्चत्थसारो में भावपूरण कथन को बहुत ही अच्छे ढंग से स्पष्ट किया है। कारुण्य भाव की चर्चा करते हुए लिखते हैं –

जत्थ करुणावासो तत्थेव माणवत्तं जीविदं। मिच्चुदंडं माणवत्तं णत्थि। दंडं पाय च्छित्तविज्जा, जेण जीवे सग-किच्चम्हि पच्छादावो होद तहा सो उण्णयणं किच्चा उत्तमं माणवत्त-जीवणं जिवेदु।[7]

मानवता वहीं जीवित रहती है जहाँ करुणा का वास है। मृत्युदण्ड कोई मानवता नहीं है। दण्ड वह प्रायश्चित विद्या है जिससे व्यक्ति में अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो तथा वह सुधर कर श्रेष्ठ मानवता का जीवन जिए।

उपदेशात्मक शैलीः – सच्चत्थ-बोहो की भाषा में उपदेशात्मक शैली का अनुसरण किया गया है। पूज्य आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज कृत सत्यार्थबोध की मुनिश्री आदित्यसागरजी की प्राकृत कृति ने धार्मिक और सामाजिक जीवन के व्यवहारिक पक्षों पर प्रकाश डालते हुए पाठकों को नीति, धर्म, दर्शन और आध्यात्मिकता की उपासना की ओर प्रेरित किया है। भाषा का स्वर शिक्षात्मक है, जो पाठकों को एक नैतिक और आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

जेसुं वयणेसुं आदहिदं णाणिणो ताइं वयणाइं भासेंति सुणेंति तहा समणुजाणेंति।[8]

[7] **सच्चत्थबोहो/कारुण्ण**
[8] **सच्चत्थबोहो/10/6**

ज्ञानी जन वे ही वचन बोलते हैं, वे ही वचन सुनते हैं, उन्हीं वचनों की अनुमोदना करते हैं, जिन वचनों में आत्महित निहित हो।

मेत्तं धणहरणं हि चोरियं णत्थि, परगीय-सामित्तजुत्तं वत्थुं अणुमदीए अंतरेण गहणं पि चोरियं।[9]

धन-हरण ही चोरी नहीं है, जो भी वस्तु परकीय स्वामित्व युक्त है, उसको उसकी अनुमति के बिना ग्रहण करना भी चोरी है।

जो दुव्विसणे णेदि, सो णत्थि सम्मित्तं, सो दु अणुऊल-रिवू।[10]

जो दुर्व्यसन में ले जाए वह सच्चा मित्र नहीं है, अपितु अनुकूल शत्रु है।

विभत्त-पुहुत्तकरणं अकरणीय-करणीयकज्जम्हि भेदकरणं सहजसिग्घ-अपहाविद-हवणं च विवेगो। [11]

विवेक का अर्थ है - विभक्त करना, अलग करना। करणीय अकरणीय में भेद करके चलना, सहज-शीघ्र किसी से प्रभावित नहीं होना।

जस्स तुमं चागीअ अदु तस्स सुमरण-चागं पि कुण, णवरि पावमिदी वि पावबंधकारणं। [12]

जिसका आप त्याग कर चुके हो अब उसके स्मरण का भी त्याग कर दो, क्योंकि पापों की स्मृति भी पाप बंध का कारण है।

सच्चत्थबोहो में पद लालित्य - पदलालित्य शब्द का अर्थ है शाब्दिक सुन्दरता। इस कृति में पदलालित्य की छँटा सर्वत्र विद्यमान है। कहते हैं -

परिग्गहेण सह कल्लाणवंछा धेणु-विसाणदो दुद्धधारादंसण-सरिच्छा। जदा पच्छिमदिसाए आदिच्चो उग्गमेहिदि, सदो आयासत्तो पुप्फाइं णिज्झरेहिंति, कच्छव-पिट्ठकेसेहिं रज्जू सिज्झेहिदि, बंझा-इत्थी सगबालगं धेणुविसाणदो णिज्झरंतं दुद्धपाणं करावेहिदि तदेव मढाधीस-पीढाधीसाणं कल्लाणं होहिदि। [13]

---

[9] सच्चत्थबोहो अचोरियं/पृष्ठ13/1
[10] **मेत्ती/पृष्ठ31/3**
[11] **विगेगो/ पृष्ठ56/6**
[12] **चागो/पृष्ठ86/3**
[13] **अपरिग्गहो/27/5**

परिग्रह के साथ कल्लाण की इच्छा करना गाय के सींगों से दुग्ध-धारा के दर्शन करना है। मठाधीशों का कल्याण तभी होगा जब पश्चिम दिशा में सूर्य उदय हो रहा होगा, आकश से पुष्प झर रहे होंगे, कछुए की पीठ के बालों से रस्सी बन रही होगी, बन्ध्या-स्त्री अपने बालक को गाय के सींगों से निकले दुग्ध का पान करा रही होगी। परिग्रह के कारण विश्व में हिंसा-वृत्ति वृद्धिमान हो रही है, जो भी झगड़े हैं वे सब पर वस्तु को निज-वस्तु बनाने के हैं।

सच्चत्थबोहो में अर्थगांभीर्य – अर्थगांभीर्य का अर्थ है, किसी वाक्य, कथन या रचना में छिपे हुए गहरे और महत्वपूर्ण अर्थों का होना, जो पहली नज़र में स्पष्ट न हों परंतु बार-बार पढ़ने से उसके अनेक अर्थ स्पष्ट होते हो। उसकी विषयवस्तु अनंत अर्थों को देनी वाली हो। ऐसे ही उत्तम प्रयोगों को सच्चत्थ बोहो में किया गया है। आत्मतत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं –

अणेगाणेग-गुण-पज्जाय-समूहं आददव्वं। पज्जायो दव्वादो सव्वहा सव्वदा भिण्णो वि णत्थि अभिण्णो वि णत्थि अवित्त भिण्णाभिण्णो त्थि। सयल-दव्वाणं गुण-पज्जाय-अहिणाण-जोग्गत्तं पि आद-दव्वम्हि खु अत्थि, कस्मिंचिदवि अण्ण-दवियम्हि णादाभावो णत्थि। णादा-भावो दु मेत्तं आद-दव्वम्हि अत्थि तहा सो तस्स तेयालिग-सहावो त्ति।। [14]

आत्मद्रव्य अनेकानेक गुण-पर्यायों का समूह है। पर्याय द्रव्य से सर्वथा भिन्न भी नहीं है, अभिन्न भी नहीं है, अपितु भिन्नाभिन्न है। सम्पूर्ण द्रव्यों की गुण-पर्यायों को जानने की योग्यता भी आत्मद्रव्य में ही है, अन्य किसी भी द्रव्य में ज्ञातापन नहीं है। ज्ञातापन तो मात्र आत्मद्रव्य में है और वह उसका त्रैकालिक स्वभाव है।

यह कथन अर्थगाम्भीर्य से भरा हुआ है। इसके भाव को हम समझ सकते है – संसार में दो द्रव्य हैं। जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। द्रव्य अर्थात् –

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।[15]

सत् द्रव्यलक्षणम्। [16]

जिसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पाया जाता है वह सत् है और जो सत् है वही द्रव्य है। जीव और अजीव दोनों द्रव्यों में ये तीनों गुण विद्यमान हैं। जीवतत्व-आत्मतत्व ध्रौव्य है परंतु संसार में

[14] **सच्चत्थबोहो/आद-तच्च/20/पृष्ठ143**
[15] **तत्वार्थसूत्र**
[16] **तत्वार्थसूत्र**

आवागमन की पद्धति कर रहा है सो उसकी विभिन्न पर्यायें होती है। कभी वह मनुष्य होता है कभी तिर्यञ्च तो कभी देव परंतु उसका आत्मतत्व ध्रौव्य है। इसलिए पर्याय द्रव्य से भिन्न नहीं है, पर्याय द्रव्य की ही होगी, द्रव्य में ही होगी उससे भिन्न नहीं होगी। उसी प्रकार से पर्याय द्रव्य से अभिन्न भी नहीं है क्योंकि पर्याय द्रव्य की है लेकिन द्रव्य पर्याय नहीं है। द्रव्य और पर्याय में भिन्नता है, दोनों पृथक् है, पर्याय भिन्न है और द्रव्य भिन्न है। पर्याय में राग-द्वेष आदि की उत्पत्ति-नाश देखा जाता है, पर्याय की समाप्ति देखी जाती है लेकिन द्रव्य तो शाश्वत है, वह सदा रहने वाला है, उसका कभी नाश नहीं होगा। अतः आत्मद्रव्य पर्याय की अपेक्षा भिन्नाभिन्न है। पर्यायों को जानने वाला कौन है? वह भी आत्मद्रव्य है। आत्मद्रव्य ही संसार के समस्त पदार्थों को जानने वाला है। इसके अलावा अन्य कोई द्रव्य किसी पदार्थ को नहीं जान सकती है। उसमें ज्ञातापन नहीं है। आत्मद्रव्य में प्रत्येक द्रव्य को जानने की क्षमता है, यह उसका स्वभाव है।

एक अन्य उदाहरण भी देखते हैं -

सगीय-कम्मोदए चिंतणेण होहिदि समत्त-जम्मणं, परकीय-कत्तत्तादो दिट्ठिं विहडेहिदि तहा हरिस-विसाद-विरामो होहिदि।[17]

स्व कर्मोदय पर चिंतन करने से समत्व का जन्म होगा, परकीय-कर्तापन से दृष्टि पृथक् होगी और हर्ष-विषाद का विराम होगा।

अर्थात् प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है। संसार में आवागमन का कारण कर्मबंधन है। कर्मबंधन जीव स्वयं के द्वारा किए गए राग-द्वेष के काषायिक भावों से करता है। फिर अधीर होकर संसार के पदार्थों में मेरापन जोड़ता है जिससे दुःखी होकर और अधिक कर्मों का बंधन करता है। जब तक जीव की दृष्टि कर्ताभाव पर टिकी है तब तक उसके जीवन में कर्मबंधन की बेड़ियाँ टूटने वाली नहीं है। इसलिए हम दूसरे के कर्ता है इस भाव को हटाना चाहिए, इस भाव के हटते ही साथ जो राग-द्वेष है वह भी समाप्त हो जायेगा।

[17] सच्चत्थबोहो/पुण्णं पांव/26/पृष्ठ 169